...ताकि बोझ न बने शिक्षा

प्रसंगवश

गिरीश्वर मिश्र

हमें खुद में झांकने की जरूरत है। हमें दूसरा क्यों परिभाषित करे? क्यों हम दूसरे के आईने में देखें? प्रामाणिकता के लिए हमें अपनी पूंजी का संवर्धन करना होगा। गुणवत्ता का संवर्धन हमारे अपने व्यवहार, अपने आचरण, अपने संबंध से जुड़ा हुआ है। इस बात से किसी की असहमति नहीं होगी कि शिक्षा बहुमूल्य हो

आज सभ्य समाज में सीखने और सिखाने कोशिश मूलत: अच्छे मनुष्य के निर्माण से जुड़ी है। इसके महत्त्व को देख कर विद्यालय की संस्था का निर्माण किया गया। आधुनिक भारत में शिक्षा कैसी हो इसके लिए हमने पूरी औपचारिक गंभीरता के साथ राधाकृष्णन और डीएस कोठारी जैसे शिक्षाविदों को लेकर आयोग बैठाते रहे, शिक्षा नीति बनाने की कवायद करते रहे।

इनकी रपटें और ऐसे ही तमाम देसी विचारकों के योगदान के बावजूद शिक्षा का मुद्दा उपेक्षित ही बना रहा। श्यामपट्ट अभियान और सर्व शिक्षा अभियान चले, शिक्षा शुल्क (सेस) लगाया गया ताकि संसाधन जुटें पर शिक्षा की स्थिति कई अर्थो में विकराल होती गई और आज शिक्षा के क्षेत्र में पहुंच, भागीदारी और गुणवत्ता को लेकर भयानक असमानता की स्थिति पैदा हो रही है। इस पर विचार करना आवश्यक है और राजनीतिक नेतृत्व को इसे गंभीरता से लेना होगा। जो बच्चे और युवा शिक्षा के लिए आ रहे हैं और जो उससे वंचित रह जा रहे हैं या खराब शिक्षा बड़ी कीमत अदा कर रहे हैं, उनकी कुंठा समाज के स्वास्य के लिए कठिन चुनौती बन रही है।

आज जब भी शिक्षा की चर्चा छिड़ती है तो हमारे सामने एक विचित्र तरह का अंतर्विरोध उपस्थित होता है। वह अंतर्विरोध यह है कि हम चाहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। एक कथा है कि कोई शिल्पकार छेनी से गणोश जी की मूर्ति बना रहे थे। मूर्ति के आकार में थोड़ा गड़बड़ दिखा। शिल्पकार ने सोचा कि आगे चल कर ठीक कर लेंगे। पर बात बनी नहीं और आकृति कुछ और बेडौल हो गई। शिल्पकार को अपने कौशल पर बड़ा भरोसा था। सोचा कि एक छेनी और मार कर ठीक कर लेंगे, ऐसा करते-करते अंत में गणोश जी तो नहीं बने हां, एक वानर की मूर्ति जरूर बन गई। हम सब लोग चाहते हैं कि शिक्षा से बड़े-बड़े उद्देश्य पूरे हों और इसके लिए अनेक तौर-तरीकों को अपनाते हैं। पर अब एक तरफ स्मार्ट क्लास और वर्चुअल क्लास रूम बन रहे हैं तो दूसरी तरफ, कक्षाहीन, अध्यापकविहीन, पुस्तकरहित विद्यालय भी चल रहे हैं। शिक्षा राम भरोसे ही चल रही है। सच्चाई यह है कि हम अपने चलने के लिए जो रास्ता चुनते हैं, वही यह निश्चित करता है कि हम गंतव्य तक पहुंचेंगे या नहीं। यदि हमारा पथ कुछ हो और इरादा कुछ और तो हम पहुंचते वहां है जो कोई और ही अपरिचित जगह होती है। वहां से न लौटना बनता है, न आगे बढ़ना। तब हम ठहर जाते हैं ''न ययौ न तस्थौ' वाली स्थिति हो जाती है। भारतीय शिक्षा के साथ भी यही हुआ है।

आज शिक्षा के नाम पर पढ़ने-पढ़ाने की पद्धति, परीक्षा की पद्धति और शैक्षिक परिसर की आबो-हवा यदि इन सब पर गौर करें तो लगेगा कि इससे गुजरना एक ऐसी जटिल भूल-भुलैया से गुजरने जैसा है। इतना तो तय है कि हमारी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक व्यवस्थाएं आपस में गुथीं हुई है। शिक्षा समाज के लिए है और वह समाज में ही अवस्थित है। पर आज तरह-तरह के दबाव हमारे सामने हैं। भूमंडलीकरण का भी दबाव बढ़ रहा है और विश्वस्तरीय शिक्षा देने चिंता बढ़ रही है। पर हम सामान्य स्तर की भी शिक्षा देने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। यह विचार की बात है कि ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है। आधारभूत संरचना की और व्यवस्थागत कमजोरियों की बात बड़ी स्पष्ट है। मैं उसकी नहीं एक आतंरिक समस्या की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा। यह समस्या सीखने के भार (लर्निंग लोड) की है। नीचे से ऊपर तक पढ़ाई में बहुत सा अनावश्यक बोझ लाद कर हम ढोते चले जा रहे हैं।

बहुत सारा समय, ऊर्जा और संसाधन उन चीजों को पढ़ने में जाया किया जाता है जो किताब के लिए ठीक, उसकी परीक्षा के लिए ठीक पर समाज के लिए या अपने परिवेश के लिए ठीक भी कि नहीं यह अस्पष्ट है। यह दुखद है कि हमलोग अपने पाठ्यक्रमों में उन भारतीय परिस्थितियों से दिमागी तौर पर बहुत दूर जा चुके हैं। हमें अपने अंदर झांकने की जरूरत है। हमको दूसरा क्यों परिभाषित करे? क्यों हम दूसरे के आईने में अपने को देखें? प्रामाणिकता के लिए हमें अपनी पूंजी का संवर्धन करना होगा। गुणवत्ता का संवर्धन हमारे अपने व्यवहार, अपने आचरण, अपने संबंध से जुड़ा हुआ है। इस बात से किसी की असहमति नहीं होगी कि शिक्षा बहुमूल्य हो, उपयोगी हो, काम लायक हो और अच्छा आदमी भी बनाए। आज गंभीर आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है और अपनी कमियों को पहचान कर साहसी कदम उठाने की जरूरत है ताकि शिक्षा भार न बने।